॥ ओ३म् ॥
वेद प्रचार, विश्व शान्ति, राष्ट्रोत्थान एवं सम्पूर्ण क्रान्ति के लिये समर्पित पाक्षिक पत्र

आर्य नीति

कृण्वन्तो विश्वमार्यम

पाक्षिक

वर्ष : 19 अंक : 11 10 जून 2019 मूल्य एक प्रति : 3 रुपये डाक पंजियन संख्या : Jaipur City/264/2018-20 वार्षिक मूल्य : 100 रुपये

12 जून को स्वामी इन्द्रवेश विद्यापीठ आश्रम में स्वामी जी की पुण्यतिथि का विशाल आयोजन

स्वामी इन्द्रवेश जी का सपना- भारत की संसद को आर्य संसद बनाएंगे

उनके स्वप्न को साकार करने का संकल्प लें

-सत्यव्रत सामवेदी

जयपुर 7 जून। आर्य समाज के क्रांतिकारी एवं धर्मात्मा नेता स्वामी इन्द्रवेश जी की पुण्यतिथि का 12 जून को स्वामी इन्द्रवेश विद्यापीठ आश्रम, टिटौली, रोहतक में विशाल आयोजन किया जाएगा जिसमें देश-विदेश के हजारों समर्पित कार्यकर्ता एवं आर्य नेता भाग लेंगे।

12 जून 2006 को हमारा क्रांतिकारी नेता पंचभौतिक शरीर को त्याग कर ब्रह्मलीन हो गया। यह आर्य समाज की महान क्षति थी। स्वामी जी पूरी आयु 'कृण्वंतो विश्वमार्यम्' के स्वप्न को साकार करने में लगे रहे।

ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र है-

इन्द्रं वर्धन्तो असुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अरावणः॥

हे सत्कर्मों में निपुण सज्जनो! परमैश्वर्यशालियों को बढ़ाते हुए पापियों का नाश करते हुए सम्पूर्ण संसार को आर्य बनाओ!

पौराणिकों ने कल्पना कर रखी है कि- इन्द्र की एक हजार आँखें हैं। इसकी संगति आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इस प्रकार लगाई है कि इन्द्र की सचिव सभा में एक हजार ऋषि थे वे ही उसकी आँखें थी। इसलिए दो आँखों वाले इन्द्र को एक हजार आँखों वाला कहते हैं। किन्तु हम तो इन्द्र उस आत्मज्ञानी को कहते हैं जिसके कथन में एक हजार ऋषियों द्वारा सुविचारित अर्थ के समान संदेह का कोई स्थान न हो। आत्मज्ञान से बढ़कर कोई ऐश्वर्य नहीं। चाणक्य ने ही अपने सूत्र में लिखा है- **जितात्मा सर्वार्थैः संयुज्यते** अर्थात् आत्मवशी को कोई वस्तु अलभ्य नहीं।

स्वामी इन्द्रवेश जी के आत्मज्ञान में एक हजार ऋषियों का सुविचारित अर्थ था परंतु तथाकथित आर्यसमाजियों ने एक हजार ऋषियों के सुविचारित अर्थ का तिरस्कार किया। यही नहीं, भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध आर्य संस्था ने अपने द्वार पर यह लिख दिया- स्वामी इन्द्रवेश का प्रवेश निषिद्ध है। जब आर्य समाज इन्द्र का ही तिरस्कार करेगा तो उसका अस्तित्व कैसे रह सकता है। यही कारण है कि आज आर्य समाज अस्तित्वहीन हो गया है।

आर्य समाज के अस्तित्वहीन होने पर विश्व किस दिशा में जाएगा इसकी कल्पना की जा सकती है। स्वामी इन्द्रवेश जी के परम शिष्य स्वामी आर्यवेश जी आर्य समाज की यज्ञाग्नि की राख में चिनगारी को शोला बनाने में अहर्निश प्रयत्नशील हैं। यह तो समय बताएगा कि चिनगारी शोला बनती है या नहीं।

आत्मज्ञान के बाद इन्द्र शब्द शारीरिक शक्ति का प्रतीक है। उनके शरीर सौष्ठव को देखकर मनु की स्मृति आ जाती है।

अवयव की दृढ़ मांसपेशियां, ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिराएं स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार

आत्मज्ञान और शारीरिक शक्ति के बाद इन्द्र शब्द का प्रयोग सांसारिक धन वैभव के लिए प्रयुक्त होता है। सांसारिक धन-वैभव से युक्त वही व्यक्ति इन्द्र पद का अधिकारी है जो सौ हाथों से कमाता हो और हजार हाथों से दान देता हो-

शतहस्तसमाहर सहस्त्रहस्तसंकिर

पूज्य स्वामी इन्द्रवेश जी महाराज
13 मार्च 1937 से 12 जून 2006

स्वामी जी जब संसद सदस्य थे और संसद में बोल रहे थे तब स्पीकर ने कहा कि स्वामी जी यह संसद है आर्य समाज नहीं है। स्वामी जी ने एकदम पलटकर जवाब दिया कि अध्यक्ष महोदय! हम इसी संसद को आर्य संसद बनाने के लिए आये हैं। यह उत्तर सुनकर सारे सांसद हंसने लगे। आज हमें स्वामी जी की पुण्यतिथि पर यह संकल्प लेना है कि भारतवर्ष की संसद को आर्य संसद कैसे बनाया जाए।

शिक्षा पद्धति में परिवर्तन

महर्षि दयानन्द और उनके परम शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द भारतवर्ष को विश्वगुरु बनाने के लिए मैकॉले की शिक्षा पद्धति को समाप्त कर वैदिक संस्कृति पर आधारित शिक्षा पद्धति की घोषणा की। स्वामी श्रद्धानन्द ने सर्वमेघ यज्ञ किया और हरिद्वार के पास गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। स्वामी जी के इस प्रयास की सारे भारतवर्ष में हँसी उड़ाई गई और यहां तक कि आर्य समाज के नेताओं ने भी प्रतिक्रिया व्यक्त की कि कौन माँ-बाप अपने बेटों को जंगल में पढ़ने भेजेगा। स्वामी जी ने विरोधियों की परवाह न करते हुए हिमालय की उपत्यका में गुरुकुल प्रारंभ किया जहां शेरों की गर्जना और हाथियों की चिंघाड़ें सुनाई देती थीं। गुरुकुल में उच्च शिक्षा भी हिन्दी में दी जाती थी। हिन्दी को आर्य भाषा कहा गया है।

महात्मा मुंशीराम के इस प्रयोग ने सारे विश्व के शिक्षाविदों को आकृष्ट किया। माननीय श्रीनिवास शास्त्री सरीखे नरम से नरम, लाला लाजपत राय सरीखे गरम से गरम, पं. मोतीलाल जी नेहरू सरीखे उग्रतम राजनीतिज्ञ, मदनमोहन मालवीय सरीखे फूंक-फूंक कर आगे कदम बढ़ाने वाले, भारत कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू सरीखी महिला, शांति निकेतन के संस्थापक विश्वविख्यात श्री रविन्द्रनाथ टैगोर सरीखे महापुरुष और जगद्वन्द्य महात्मा गांधी सरीखे संत गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली देखकर भाव विभोर हो उठे और स्वाधीनता संग्राम के नेताओं का गुरुकुल कांगड़ी तीर्थस्थल बन गया। अनेक विदेशी शिक्षाविदों के अतिरिक्त इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री मिस्टर रेमजे मैकडॉनल्ड ने गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली से अभिभूत होकर कहा- गुरुकुल का उद्देश्य भारतीयों को सरकारी यूनिवर्सिटियों की तरह दोगले अंग्रेज न बनाकर पूर्ण भारतवासी बनाना है। मैकडॉनल्ड ने इंग्लैण्ड जाकर गुरुकुल कांगड़ी के बारे में डेली क्रॉनिकल में एक लेख लिखा जिसमें अपने विचार व्यक्त करते हुए मैकडॉनल्ड ने कहा कि मैकॉले के सम्मति प्रकट करने के बाद भारत के शिक्षा के क्षेत्र में यह पहला ही प्रशस्त यत्न किया गया। मैकॉले के लेख के परिणामों से प्रायः सभी भारतवासी असंतुष्ट हैं। किन्तु जहां तक मुझको मालूम है गुरुकुल के संस्थापकों के सिवाय किसी और ने उस असंतोष को कार्य में परिणित करते हुए शिक्षा के क्षेत्र में नया परीक्षण नहीं किया है। लेख के अंत में मैकडॉनल्ड ने लिखा- मैं स्वप्न में किसी को यह कहते हुए सुन रहा हूँ- हम केवल यह चाहते हैं कि शांति से हमको ईश्वर का भजन करने दो। क्या यही राजद्रोह है।

अंग्रेजों के शासन के दौरान स्वामी श्रद्धानन्द एवं गुरुकुलों के संस्थापकों ने हिन्दी माध्यम से उच्च शिक्षा देकर मैकॉले को धूलिधूसरित कर दिया। हमें आशा थी कि देश की आजादी के बाद सर्वत्र शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होगा परंतु भारतवर्ष की शिक्षा पद्धति पर मैकॉले

(लगातार पृष्ठ 2 पर)

राख से उठकर पुन: शासन कर रहा है। आज भारतवर्ष के समृद्ध वर्ग की संतान अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ रही है। दो प्रकार की शिक्षा पद्धति है- इंडिया की शिक्षा पद्धति और भारत की शिक्षा पद्धति। भारतवर्ष के 90 प्रतिशत गरीब परिवारों और किसानों के पुत्र एवं पुत्रियां हिन्दी माध्यम के स्कूलों में पढ़ रहे हैं।

सभी स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में दाखिले की प्रवेश परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा है। 27 मई को देश के विख्यात जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रवेश परीक्षा थी, लेकिन इसमें वही सफल हो सकता है जो अंग्रेजी माध्यम से पढ़ा हो। हिन्दी माध्यम में पढ़ने वाले विद्यार्थी जेएनयू में दाखिले के बारे में सोच ही नहीं सकते। हर मंच पर भारतवर्ष के 90 प्रतिशत विद्यार्थी आवाज उठाते रहे हैं, अनुरोध करते रहे हैं लेकिन कोई सुनने वाला नहीं।

संघ लोक सेवा आयोग पर अंग्रेजी का साया बहुत गहरा है। हाल ही घोषित सिविल सेवाओं के परिणाम भारतीय भाषाओं के एकदम खिलाफ गए हैं, मात्र चार प्रतिशत। दरअसल 2011 में तत्कालीन सरकार के सिविल सेवाओं की प्रारंभिक परीक्षा पर अंग्रेजी लाद देने के दुष्परिणाम आज तक हावी हैं। आयोग की अन्य राष्ट्रीय परीक्षाओं जैसे वन सेवा, इंजीनियरिंग सेवा, चिकित्सा सेवा में भी भारतीय भाषा का कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि अंग्रेजी और अमीरी के गठजोड़ से सिविल सेवाएं अंग्रेजी और अमीरी के द्वीप बनकर रह जाएंगे। क्या यह उस जनादेश के खिलाफ नहीं होगा जिसका आधार जनता से वोट मांगने के लिए इस्तेमाल की गई भाषा थी।

राजस्थान में भी केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड की पुस्तकें पाठ्यक्रम में थी और विद्यार्थी प्रतियोगी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने लगे थे परंतु भाजपा के शासन में पुन: राजस्थान बोर्ड की पुस्तकें अनिवार्य कर दीं और वर्तमान कांग्रेस की सरकार भी उसी नक्शे कदम पर चल रही है। हमने राजस्थान के शिक्षा मंत्री को इस संबंध में ज्ञापन दिया परंतु उन्होंने इसे गंभीरता से नहीं लिया और खड़े-खड़े बात करके हमारे ज्ञापन पर शिक्षा सचिव के नाम मार्क कर दिया।

यह ठीक है कि आज आर्य समाज निष्प्राण हो चुका है। उसमें आंदोलन की क्षमता नहीं रही है परंतु जो भी आर्य जगत में सक्रिय नेता हैं वे प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री को जनहित में ज्ञापन तो दे ही सकते हैं। केन्द्रीय सरकार ने भी समान शिक्षा पद्धति की घोषणा की है। आर्य समाज के नेताओं को मेरा परामर्श है कि वे इस संबंध में प्रधानमंत्री मोदी को और राजस्थान के मुख्यमंत्री गहलोत एवं अन्य प्रांतों के मुख्यमंत्रियों को ज्ञापन देकर समान शिक्षा पद्धति के लिए आग्रह करें। मोदी जी ने समस्त किसानों को छह हजार रुपया प्रतिमाह देने की घोषणा की है। क्या इससे गरीबों की आर्थिक स्थिति ठीक होगी। किसानों की संतानों को वही शिक्षा क्यों नहीं दी जाती जो इंडिया-भारत के बच्चों को दी जाती है। समान शिक्षा पद्धति से ही गरीब परिवारों के बच्चों को नौकरी मिलेगी और उनकी आर्थिक स्थिति ठीक होगी।

पर्यावरण एवं जल संकट

- महर्षि दयानन्द ने प्रदूषण एवं जल संकट के निवारण के लिए पुन: यज्ञ की प्रथा प्रारंभ की थी। महर्षि ने घोषणा की कि यज्ञ से जल, वृष्टि और वायु शुद्ध होता है। हम मौत का आलिंगन करने के लिए तैयार है परंतु यज्ञ करने में हमारी कोई रुचि नहीं है। कारखानों से निकलते हुए धुएं से तेजाब की वर्षा होती है तो यज्ञ से उठते हुए धुएं से अमृत वर्षा क्यों नहीं हो सकती है।

विश्व में सबसे ज्यादा प्रदूषित देशों में भारत चौथे नम्बर पर है। 2018 में भारत का प्रदूषण 72.5 पी.एम. था। चीन के पास दुनिया की 50 प्रतिशत विद्युत चलित गाड़ियां और 99 प्रतिशत विद्युत बसें हैं। चीन ने कार्बन उत्सर्जन के ऐसे कठोर नियम लागू किये कि उसके कई उद्योग बंद हो गए। हम इससे खुश है कि इसके कारण हमारे यहां का कार्बन उद्योग चमक गया और हमारी कई कम्पनियों के शेयर रातों रात कई सौ गुना बढ़ गए।

आजादी के आंदोलन के समय हमारे नेता ये सोचते थे कि आजादी के बाद देश में दूध-दही की नदियां बहेंगी परंतु आज आजादी के 72 वर्ष के बाद सारा भारत एक-एक बूंद को तरस रहा है। राजस्थान के अनेक बांधों में केवल 10-15 दिन का पानी बचा है। राजस्थान के अधिकांश जिलों में कहीं सप्ताह में एक दिन तो कहीं दो दिन जलापूर्ति होती है।

महर्षि ने हमें राष्ट्रीय वैदिक प्रार्थना दी-

निकामे निकामे न: पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो
नऽओषधय: पच्यन्तां योगक्षेमो न: कल्पताम्॥

इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवें।
फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी।
हों योग-क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी॥

भारतवर्ष की वर्तमान राजनीतिक स्थिति एवं हमारा दायित्व

यह एक निर्विवाद सत्य है कि देश की आजादी के लिए सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने पंचजन्य फूंका था। महर्षि ने घोषणा की- **कोई कितना ही करे परंतु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तर के आग्रह, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।** स्वराज्य शब्द का प्रयोग भी सबसे पहले महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा ही किया गया। सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने स्वदेशी राज्य शब्द प्रयुक्त किया है और आर्याभिविनय में स्वराज्य का।

महर्षि की प्रेरणा से हजारों आर्य युवक स्वतंत्रता संग्राम की अग्नि में कूद पड़े और ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी। महर्षि के निर्वाण के बाद ही उदयपुर के केसरीसिंह बारहठ ने अपने सारे परिवार की स्वतंत्रता की यज्ञाग्नि में आहुति दे दी। केसरीसिंह जेल में थे और उनके 25 वर्षीय पुत्र की जेल में यातनाएं देकर हत्या कर दी। जब ठाकुर केसरीसिंह जेल से छूटकर आए तो किसी सज्जन ने उनसे पूछा कि आपको अपने पुत्र की हत्या का समाचार कब मिला। केसरीसिंह ने कहा कि मुझे आपसे ही यह समाचार मिल रहा है। सरफरोशी की तमन्ना एवं मेरा रंग दे बसंती चोला के अमर गायक पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी फांसी की कोठरी से राष्ट्र के नाम संदेश दिया- 'यदि हम लोगों ने प्राण प्रण से जनता को शिक्षित बनाने में पूर्ण प्रयत्न किया होता तो हमारा उद्योग क्रांतिकारी आंदोलन से कहीं अधिक लाभदायक होता। भारत की भावी संतान तथा नवयुवक वृंद क्रांतिकारी संगठन करने की अपेक्षा जनता की प्रवृत्ति को देशसेवा की ओर लगाने का प्रयत्न करें और श्रमजीवी तथा कृषकों का संगठन करके उनको जमींदारों तथा रईसों के अत्याचारों से बचाएं। भारतवर्ष के रईस तथा जमींदार सरकार के पक्षपाती हैं।' बिस्मिल ने संदेश दिया कि 'क्रांति द्वारा राजतंत्र को पलट कर प्रजातंत्र स्थापित भी कर दिया जाए तो बड़े-बड़े धनी पुरुष अपने धन बल से सब प्रकार के अधिकारियों को दबा बैठते हैं। कार्यकारिणी समितियों में बड़े-बड़े अधिकार धनियों को प्राप्त हो जाते हैं देश के शासन में धनिकों का मत ही उच्च आदर पाता है। धन बल से देश के समाचार पत्रों, कल कारखानों तथा खानों पर उनका ही अधिकार हो जाता है। मजबूरन जनता की अधिक संख्या धनिकों का समर्थन करने को बाध्य हो जाती है। जो दिमाग वाले होते हैं वे भी समय पाकर बुद्धिबल से जनता की खरी कमाई से प्राप्त किये अधिकारों को हड़प कर बैठते हैं। स्वार्थ के वशीभूत होकर वे श्रमजीवियों तथा कृषकों को उन्नति का अवसर नहीं देते। अंत में ये लोग भी धनिकों के पक्षपाती होकर राजतंत्र के स्थान में धनिकतंत्र की ही स्थापना करते हैं।'

30 वर्षीय पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल को फांसी देने के बाद क्रांतिकारी दल का नेतृत्व शहीद-ए-आजम भगतसिंह ने किया और उन्हें भी 23 वर्ष 5 महिने 26 दिन की आयु में फांसी पर चढ़ा दिया गया। भगतसिंह का नाम भारतवर्ष के हर आदमी की जबान पर था। भगतसिंह ने कहा कि **पिस्तौल और बम कभी इंकलाब नहीं ला सकते बल्कि इंकलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है।** सेशन जज की अदालत में भगतसिंह से पूछा गया कि वे क्रांति से क्या समझते हैं? प्रश्न के उत्तर में भगतसिंह ने कहा- 'क्रांति बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रांति से हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए। एक ओर सबके लिए अन्न उगाने वाले कृषक परिवार भूखों मर रहे हैं, सारी दुनिया के बाजारों में कपड़े की पूर्ति करने वाले बुनकर अपने और अपने बच्चों के शरीर को ढापने के लिए पूरे वस्त्र प्राप्त नहीं कर पाते, भवन निर्माण, लुहारी और बढ़ईगिरी के कामों में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण करके भी गन्दी बस्तियों में रहते और मर जाते हैं। दूसरी और पूंजीपति, शोषक और समाज पर घुन की तरह जीने वाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। क्रांति से हमारा प्रयोजन अंतत: एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है जिसको इस प्रकार के घातक खतरे का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाए। इसका परिणाम यह होगा कि विश्व संघ मानव जाति को पूंजीवाद के बंधन तथा युद्ध से उत्पन्न होने वाली बरबादी और मुसीबतों से बचा सकेगा। लोकप्रभुता की स्थापना श्रमिकों का अंतिम ध्येय है। इन आदर्शों तथा इस आस्था के लिए हम उन सब कष्टों का स्वागत करेंगे जो हमें न्यायालय द्वारा दिए जाएंगे। क्रांति की इस विधि पर हम अपना यौवन धूपबत्ती की भांति जलाने के लिए सन्नद्ध हुए हैं। इतने महान ध्येय के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं माना जा सकता है। हम क्रांति के उत्कर्ष की संतोषपूर्वक प्रतीक्षा करेंगे और जब तक हमें यह लक्ष्य प्राप्त नहीं होता हम फांसी के तख्ते से भी पुकारते रहेंगे-**इंकलाब जिंदाबाद।**'

भगतसिंह की इस यज्ञाग्नि में स्वामी इन्द्रवेश जी ने अपनी आहुति दी और किसानों के लिए अनेक बार आमरण अनशन किया। स्वामी इन्द्रवेश जी ने क्रांति का जो बीजारोपण किया आज वह वटवृक्ष बन गया है। आर्य जगत ने स्वामी इन्द्रवेश जी के रास्ते पर चलने से इनकार कर दिया परंतु आज नरेन्द्र मोदी और राहुल गांधी तथा सभी राजनीतिक दलों के नेता स्वामी इन्द्रवेश जी के रास्ते पर चल रहे हैं और किसानों को अपनी और आकृष्ट करने के लिए घोषणाएं कर रहे हैं। मोदी जी कहते हैं कि प्रत्येक किसान के खाते में छह हजार रुपया प्रतिमास जमा होगा और राहुल गांधी कहते हैं कि किसानों के कर्जे माफ कर दिए जाएंगे। कांग्रेस शासित प्रांतों में किसानों के कर्जे माफ भी किए गए।

परंतु जिस भारत का सपना शहीदों ने लिया था क्या उस सपने को साकार करने में हम लगे हैं। आज सारे देश में पूंजीवाद का वर्चस्व है। संसद में सुपर रिच सांसदों की संख्या 60 प्रतिशत है। कांग्रेस के सांसद कमलनाथ की संपत्ति 660 करोड़ रुपए है। कन्याकुमारी से कांग्रेस सांसद एस. वसंतकुमार की संपत्ति 417 करोड़ है। बंगलौर ग्रामीण के कांग्रेस सांसद डी.के. सुरेश की संपत्ति 338 करोड़ है। शिवसेना के 100% प्रतिशत, बसपा 100%, डीएमके 96%, जेडीयू 94%, टीएमसी 91%, भाजपा 88%, वायएसआरसी 86%, कांग्रेस 84%। इस स्थिति में सर्वहारा वर्ग सत्ता को कैसे प्राप्त कर सकता है। रामप्रसाद बिस्मिल और भगतसिंह तथा इन्द्रवेश जी के सपनों को जलाकर राख कर दिया गया है। स्वामी इन्द्रवेश जी के सपनों को साकार करने के लिए एवं संसद को आर्य संसद बनाने के लिए यदि हम फांसी के तख्ते से इंकलाब जिंदाबाद के नारे लगाने में असमर्थ हैं तो आर्य समाज के मंचों से तो ये नारे लगा सकते हैं और आर्य समाज के प्रत्येक उत्सव में पूंजीवाद के विरुद्ध बिस्मिल एवं भगतसिंह के संदेश को जन-जन तक पहुंचाने का संकल्प तो ले सकते हैं। यही संकल्प स्वामी इन्द्रवेश जी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

तत्काल दूर करना होगा कृषि संकट

सिराज हुसैन, नीति विश्लेषक

दुनिया भर के देश जलवायु परिवर्तन को लेकर चिंतित हैं। समृद्ध देशों, विशेष तौर परयूरोपीय संघ ने तो जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने के लिए इस दिशा में शोध की महत्ता को भी समझा है। उन्होंने केवल एक दशक में ही इससे संबंधित शोध और नवोन्मेषी परियोजनाओं पर होने वाले व्यय को दोगुना कर दिया है। यूरोपीय संघ इस दिशा में अपने कुल बजट का चार फीसदी व्यय करता था, जिसे बढ़ाकर आठ फीसदी यानी 83.5 अरब डॉलर कर दिया गया। दूसरी ओर, ब्रिटिश संसद ने भी जलवायु परिवर्तन की आपात स्थिति घोषित करने के लिए मतदान किया।

बड़ा सवाल यह है कि क्या भारत इस विषय को लेकर गंभीर है? मेरा मानना है कि जलवायु परिवर्तन की चुनौती का सामना कृषि अनुसंधान के क्षेत्र में निवेश के जरिए किया जा सकता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने पूसा 1121 बासमती धान, कल्याण सोना गेहूं, पूसा बोल्ड सरसों, सीओ 0238 गन्ना आदि किस्में विकसित की हैं। लेकिन क्या इतना ही पर्याप्त है? स्थिति तो यह है कि देश में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के 100 संस्थान हैं, जिनमें अधिकांश ऐसे हैं जहां पूर्णकालिक निदेशक तक नहीं हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में नियमित प्रमुख का पद भी तीन वर्षों से रिक्त पड़ा हुआ है। ये हालात कृषि के प्रति हमारी गंभीरता को दर्शाते हैं।

देश की राजनीति के हालात ही कुछ ऐसे हैं कि भारत सरकार के मंत्रियों को नीति निर्माण के लिए समय ही बहुत कम मिलता है। देश में कहीं न कहीं चुनाव होते रहते हैं और वे उनमें व्यस्त रहते हैं। उदाहरण के तौर पर अप्रेल-मई की जबर्दस्त गर्मी में लोकसभा चुनाव हुए, नेताओं ने जमकर पसीना बहाया। और अब उन्हें एक बार फिर हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, झारखण्ड और महाराष्ट्र विधानसभा चुनावों की तैयारी करनी है। इस तरह चुनावों की व्यस्तता से निपटने के बाद संसदीय सत्र के उत्तर देने और पूर्व में किए गए कार्यों का बचाव करने में व्यय होता है। ऐसे में शायद उनके पास भविष्य के लिए नीतियां बनाने का समय नहीं होता। जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में संबंधित और कृषि के संकट से निपटने के लिए राज्यों और केन्द्र सरकारों को ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि जलवायु परिवर्तन की वास्तविक परेशानियां देश के नेताओं के लिए परेशानी का सबब नहीं है, जबकि आम जनता इन परेशानियों को झेल रही है। अब देखिए, आंध्रप्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा, गुजरात, राजस्थान, झारखण्ड और बिहार के बड़े भू-भाग सूखे की चपेट में हैं। इसके बावजूद चुनाव अभियान में किसी के लिए भी यह बड़ा मुद्दा ही नहीं बन पाया। चुनाव परिणाम बता रहे हैं कि कृषि कार्य से जुड़े चुनावी क्षेत्रों के किसानों ने भी कृषि की परेशानियों से अधिक महत्त्व राष्ट्रीय सुरक्षा को दिया। लेकिन अब पानी की किल्लत देश की नई सरकार के लिए सबसे बड़ी चुनौती बनने वाली है। राजस्थान के ग्रामीण व किसान तो कृषि कार्यों के लिए पानी और जीवनयापन के संसाधनों की किल्लत से जूझते रहे ही हैं। राजस्थान में औसत वर्षा का स्तर 580 मिलीमीटर है, 60 फीसदी क्षेत्र या तो शुष्क है या फिर अर्धशुष्क। यही वजह है कि ग्रामीणों ने जीवन-यापन के संसाधन तलाशने के लिए या तो राज्य के शहरी इलाकों या फिर गुजरात की ओर पलायन किया है। अधिकतर सिंचाई परियोजनाओं में देरी हो चुकी है। इंदिरा गांधी नहर की शुरुआत को आधी सदी बीत चुकी है, लेकिन बाड़मेर अब तक इसका लाभ उठा पाने से वंचित है। इसी तरह नर्मदा नहर परियोजना और अन्य कई लिफ्ट सिंचाई परियोजनाएं दशकों से पूरी नहीं हो पाई हैं। विभिन्न राज्यों में सिंचाई मंत्रालय का बजट काफी अधिक और कहीं-कहीं तो सर्वाधिक होता है, इसीलिए शायद राजनेता इस मंत्रालय को पाने के लिए लालायित रहते हैं।

अब समय आ गया है कि राज्यों के सिंचाई मंत्रालय और विभिन्न राज्यों में सिंचाई परियोजनाओं की प्रगति की तिमाही समीक्षा करने वाली केबिनेट समिति का भार किसी विशेषज्ञ को दिया जाए। देश के हालात तो ये हैं कि मोदी सरकार द्वारा शुरू की गई प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत 99 परियोजनाओं में केवल छह ही ऐसी हैं जिनसे किसानों को जल उपलब्ध कराया जा रहा है। देश की नई सरकार के पास यदि दो दशक आगे तक की सोचने की शक्ति और सोच है तो वह देश के जलसंकट को साधारण संकट की तरह नहीं निपटाना चाहेगी। सरकार को समझना होगा कि देश में जल 'आपात स्थिति' बन चुका है।

नई सरकार ने यदि देश के जल संकट से बाहर निकलने के लिए दीर्घकालीन योजना नहीं बनाई और उस पर तत्काल प्रभाव से अमल नहीं किया तो बहुत से किसान, खेती छोड़ने को मजबूर हो सकते हैं। यह कई मायनों में और भी विकट परिस्थिति होगी। उदाहरण के तौर पर ध्यान देना होगा कि राजस्थान में प्रति किसान औसत कृषि भूमि 2.73 हेक्टेयर है जबकि राष्ट्रीय औसत 1.08 हेक्टेयर है। नए बजट प्रावधान के मुताबिक दो हेक्टेयर है। नए बजट प्रावधान के मुताबिक दो हेक्टेयर भूमिल वाला किसान ही 6000 रुपए प्रति वर्ष पाने का अधिकारी है। ऐसे में संभव है कि कई जरूरतमंद किसान 6000 रुपए हासिल कर पाने से वंचित रह जाएं। जरूरत है कि नीतिगत विसंगति को समय रहते दूर किया जाए।

इसी तरह कई बार दाल-दलहन, तेल-तिलहनों के उचित दाम किसानों को नहीं मिल पाते। देश के सार्वाधिक सरसों उत्पादक राज्य राजस्थान के किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य से काफी कम कीमत पर सरसों बेचने को बाध्य होना पड़ रहा है। सरकार ने हालांकि सस्ते पॉम तेल के आयात को बाधित करने के लिए आयात शुल्क बढ़ाया किंतु महंगाई बढ़ने की आशंका के चलते इसे कहीं फिर से कम न करना पड़े। यह उदाहरण तो केवल राजस्थान का है। देश के अन्य राज्यों की स्थितियां कमोबेश एक-सी ही हैं। इस किस्म की चुनौती से पार पाने के लिए नई सरकार को जलवायु परिवर्तन पर शोध, नवोन्मेषी परियोजनाओं के साथ-साथ महंगाई को नियंत्रित करने की दीर्घकालीन कृषि योजनाओं पर काम करना होगा।

किसान हितों की रक्षा के साथ महंगाई काबू में रखने का कायम करना होगा संतुलन

नई सरकार के लिए चुनौती कृषि उत्पादों की गिरती कीमतें संभालना

भाजपानीत राजग ने आम चुनाव में जिस तरह प्रचंड बहुमत हासिल किया है, वह एक और एनडीए-1 की लोकप्रियता स्पष्ट करता है तो दूसरी ओर यह भी जाहिर करता है कि एनडीए-2 सरकार को लेकर जनता की अपेक्षाएं ज्यादा हैं।

देखा जाए तो जनता की अपेक्षाएं जमीनी स्तर पर गहराती समस्याओं का प्रतिबिंब है। देश की आम जनता, ग्रामीण आबादी और अर्थव्यवस्था से इन समस्याओं का गहरा नाता है। चालू रबी विपणन सीजन की बात करें तो अधिकांश जिंसों, जिनके लिए सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित किए थे, का लेन-देन इन दरों की तुलना में 10 से 30 फीसदी नीचे के स्तर पर किया जा रहा है। बीते खरीफ सीजन में भी हालात कुछ ऐसे ही थे। जिंस बाजार में मुख्य फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्यों में उत्पादन लागत पर 50 फीसदी की बढ़ोतरी की गई थी। इसके बावजूद लगातार मूल्यों में गिरावट से नई सरकार को तत्काल निपटना होगा और ऐसी नीति तैयार करनी होगी जिसके जरिए किसान हितों और महंगाई से निपटने के बीच संतुलन कायम किया जा सके।

जौ, तूअर और कपास जैसी कुछ फसलों की कीमतें उचित स्तर पर जरूर हैं, क्योंकि इनकी मांग, आपूर्ति से कहीं ज्यादा है। हालांकि कुछ क्षेत्रों में सरकार की ओर से अधिकृत एजेंसियां दलहन और तिलहन की खरीदारी करती हैं, लेकिन खरीदारी की मात्रा इतनी कम होती है कि बाजार पर कोई असर नहीं पड़ता। दरअसल सरकार की प्रमुख मूल्य समर्थन योजना पीएम-आशा (अन्नदाता आय संरक्षण अभियान) की खामियों का नतीजा किसानों को भुगतना पड़ा है। आशंका है कि इधर नई सरकार कार्यभार संभालेगी और उधर किसान सड़कों पर होंगे।

जिंस बाजार में कीमतों की गिरावट का कारण असल में व्यापक तौर पर बीते कुछ वर्षों से निरंतर आवश्यकता से अधिक हो रहा उत्पादन, जिंसों के वैश्विक मूल्यों में मंदी और कृषि जिंसों को लेकर प्रतिकूल घरेलू और बाहरी कारोबारी नीतियां जिम्मेदार हैं। पूर्व में खरीदा गया स्टॉक बाजार में उतारना और घरेलू फसल का विपणन जारी रहते आयात की अनुमति देना भी कारण हैं। पीएम-आशा योजना इसके सभी तीन मूल्यों समर्थन घटकों - एमएसपी पर स्टॉक की सरकारी खरीद, मध्यप्रदेश व कुछ अन्य राज्यों में भावांतर भुगतान और तय कमीशन पर उत्पादों की सरकारी खरीद और प्रबंधन में निजी क्षेत्र का योगदान - में मूलभूत खामियों के चलते नाकाम रही है।

दरअसल, दुनिया की सबसे बड़ी सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सफल बनाने में कारगर रही खुली सरकारी खरीदने राजकोष पर भारी दबाव बनाया है। लेकिन यह कुछ मुट्ठीभर राज्यों के उन हिस्सों तक ही सीमित रही, जहां जरूरी अवसंरचना मौजूद थी। जहां ढांचा मौजूद नहीं है, वहां गेहूं-चावल भी एमएसपी से कम पर खरीदे-बेचे जा रहे हैं। ऐसे में सभी फसलों को लाना कैसे संभव हो पाएगा?

बिचौलियों की मौजूदगी, विनियमित मंडियों से खरीद-फरोख्त की पाबंदी, मुश्किल पंजीकरण और 25 फीसदी उत्पाद की ही खरीद की सीमा ने भावांतर भुगतान योजना को नाकाम कर दिया और इसी तरह खरीदारी, बोरी में भरने, परिवहन, भंडारण और स्टॉक निस्तारण के भारी-भरकर काम के बदले 15 फीसदी कमीशन की योजना ने निजी कारोबारियों को दूर कर दिया।

कीमतों को उचित स्तर पर लाने के लिए इन सभी मसलों को हल करने के साथ और भी कदम उठाने होंगे, जिनमें न केवल आयात-निर्यात की दरों में परिवर्तन शामिल हैं, बल्कि सरप्लस स्टॉक के लिए निर्यात का दरवाजा भी खोलना होगा। सरकारी दखल के बिना शानदार रिटर्न देने वाली उच्च मूल्य वाली फसलों की ओर भी किसानों का ध्यान खींचना होगा।

नौतपा की गर्मी

साल-दर-साल खराब होती स्थिति के बावजूद ऐसे कदम नहीं के बराबर उठाए जा रहे हैं जिनसे मौसम को अनुकूल रखा जा सके।

इस साल सूर्य का रोहिणी नक्षत्र में प्रवेश 25 मई को हुआ है। भारतीय पारंपरिक ज्ञान के अनुसार इसके बाद के नौ दिन भीषण गर्मी वाले हैं जिसे नौतपा कहा जाता है। यानी 3 जून तक हमें गर्मी से राहत मिलने की उम्मीद नहीं है। गर्मी से हमें परेशानी भले ही हो रही हो, पर यह हमारे गांवों के लिए अच्छी खबर है। दरअसल यह समय मानसून की बारिश के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। माना जाता है कि नौतपा में अच्छी गर्मी नहीं पड़ी तो अच्छी बारिश की संभावना भी कम हो जाती है। अच्छी बारिश का सीधा संबंध खेती से है और खेती का हमारी आर्थिक सेहत से। पर्यावरण प्रदूषण बढ़ने और वातावरण का संतुलन बिगड़ने के बावजूद प्रकृति के इस विधान में कोई बदलाव नहीं आया है। यह जरूर हुआ है कि वातावरण असंतुलन के कारण हर साल धरती की गर्मी बढ़ रही है और अनिश्चित बारिश हमारे किसानों को तबाह कर रही है। इस बार पिछले कुछ दिनों में तापमान बढ़ा है और तेलंगाना, राजस्थान और मध्यप्रदेश सहित देश के कई इलाकों में लू के थपेड़ों से जन-जीवन प्रभावित हुआ है। तेलंगाना में तो इस बार गर्मी से होने वाली मौतों ने भी रिकॉर्ड तोड़ दिया है। ज्यादातर स्थानों पर 45 डिग्री से ज्यादा तापमान दर्ज किया जा रहा है। कुछ स्थानों पर यह 48 डिग्री तक जा पहुंचा है। इसलिए मौसम विभाग फिलहाल औसत मानसून की उम्मीद कर रहा है। हालांकि अन्य संस्थानों के विशेषज्ञ लगातार कई इलाकों में सूखे की चेतावनी दे रही है। साल-दर-साल खराब होती स्थिति के बावजूद ऐसे कदम नहीं के बराबर उठाए जा रहे हैं जिससे मौसम को अनुकूल रखा जा सके। पुराने जल-स्रोतों को संजोने की राष्ट्र स्तरीय पहल भी नहीं हो रही है।

हमारी लापरवाही का असर सामने है। आईआईटी गांधीनगर का अनुमान है कि मार्च से लेकर मई तक अपेक्षा से 23 फीसदी कम बारिश हुई है। करीब दो-तिहाई हिस्से में कम या ज्यादा कम बारिश रेकॉर्ड की गई है। विशेषज्ञों ने चेतावनी दी है कि मानसून-पूर्व वर्षा में कमी के कारण देश के 40 फीसदी इलाकों में सूखे जैसे हालात हो सकते हैं। नई सरकार के लिए यह अच्छा संकेत नहीं होगा क्योंकि अनिश्चित बारिश के कारण देश के किसान पहले से ही मुश्किलों का सामना कर रहे हैं। कहीं पर बारिश कम होने से समस्या होती है तो कहीं असमय बारिश समस्या बन जाती ह। इस बार दक्षिणी राज्यों में हालात ज्यादा खराब हैं और समस्या विकराल रूप ले सकती है। कम बारिश का मतलब भू-जल स्रोतों में कमी आना भी है, जिससे शहरों में पानी की समस्या बढ़ सकती है। इसलिए अब समय आ गया है कि पर्यावरण प्रदूषण का कम करन के लिए ठोस उपाय किए जाएं। यूरोप के एक छाटे शहर लग्जमबर्ग ने सार्वजनिक वाहनों की मुफ्त सेवा शुरू करने का फैसला किया है जो ऐसे अन्य शहरों के लिए प्रेरक है। दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों में शुमार दिल्ली में वायु प्रदूषण हमेशा एक मुद्दा रहा है। कई अन्य शहर भी कतार में है। लग्जमबर्ग में प्रति एक हजार आबादी पर 662 निजी वाहन हैं तो दिल्ली में यह आंकड़ा 556 है। यहां वायु प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण निजी वाहन ही हैं। दिल्ली सरकार का ऑड-इवेन नंबर की गाड़ियों को बारी-बारी से चलाने का फैसला भी दुनिया में काफी सराहा गया, पर उसके कारण वायु प्रदूषण में कोई खास कमी महसूस नहीं की गई। लग्जमबर्ग के फार्मूले पर भी हमें जरूर विचार करना चाहिए। हमें इसका मूल्यांकन करना चाहिए कि सार्वजनिक वाहनों की मुफ्त सेवा शुरू करने से होने वाला नुकसान क्या पर्यावरण प्रदूषण से होने वाली हानि से ज्यादा है?

जनता को सिर्फ विपक्ष नहीं, विकल्प चाहिए

-: योगेन्द्र यादव :-

हमारे लोकतंत्र की एक अच्छी परंपरा है। परिणाम घोषित होते ही चुनाव हारने वाली पार्टी 'जनादेश' को स्वीकार करती है। बाकी दुनिया को देखें तो यह कोई छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं है। यहां पर गौर करने वाली बात यह है कि हम 'जनादेश का सम्मान' वाला मुहावरा बोलना तो सीख गए हैं लेकिन, क्या वाकई हम जनादेश का सम्मान करते हैं? क्या हम जनता के आदेश का सिर्फ इस तरह पालन करते हैं जैसे कोई कर्मचारी अपने बॉस के आदेश का? या फिर हम इस जनादेश के पीछे की जनभावना का भी सम्मान करते हैं? जनादेश में निहित जन और देश का भी सम्मान करते हैं?

यह सवाल मुझ जैसे मोदी विरोधियों को पूछना चाहिए। वैसे मैं मोदी का या किसी भी व्यक्ति का विरोधी नहीं हूँ। कोई व्यक्तिगत खुंदक नहीं है। उनके कई व्यक्तिगत गुणों का सम्मान भी करता हूँ, लेकिन उनकी विचारधारा से बुनियादी असहमति रही है। गुजरात दंगों के समय

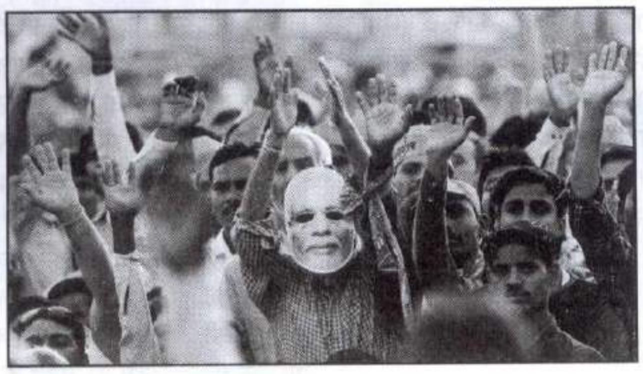

उनकी भूमिका, हिन्दू मुसलमान के सवाल पर उनकी कार्यशैली और उनकी सरकार के रिकॉर्ड का खुला आलोचक रहा हूँ। इसलिए मोदी विरोधियों में गिना जाता हूँ। किसी के द्वारा की गई कोई भी आलोचना हमेशा सकारात्मक ही होती है पर इसे विरोध समझ लिया जाता है। आज मुझ जैसे लोगों के लिए अपने गिरेबान में झांकने का वक्त है। चुनाव परिणाम को ईवीएम या किसी हेरा-फेरी के माथे मढ़ देना जनादेश का अपमान है। सच यह है कि मोदी जी जीते, क्योंकि देश की जनता ने उनमें विश्वास व्यक्त किया, उनमें भरोसा दिखाया। इसके लिए जनता के अज्ञान या उसमें छुपी सांप्रदायिकता को दोष देना भी गलत है। लोकतंत्र का तकाजा है कि 'ज्ञानी' अपना दंभ छोड़कर, सिर झुकाकर 'अज्ञानी' की बात सुने और उससे सीखे। जनता को उसकी गलती बताना और उसे आगाह करना भी हमारा दायित्व है।, लेकिन शुरुआत सिर झुकाकर सुनने से होनी चाहिए। आगाज ठीक होगा तो अंजाम भी उचित होगा।

इस जनादेश का पहला सबक यह है कि जन के मन में देश बसा है। इस चुनाव में बहुत लोगों ने अपना निजी नफा-नुकसान न देखकर सिर्फ देश के लिए वोट दिया। इस सरकार की नीतियों से पैदा हुई आवारा पशु की समस्या से पीड़ित किसान ने रात भर खेत की रखवाली की और सुबह उठकर मोदी जी को वोट दिया। नौकरियों में धांधली के शिकार बेरोजगार युवा ने भी मोदी जी को वोट दिया। देश की सुरक्षा और देश की प्रतिष्ठा आज भी करोड़ों भारतवासियों के लिए उनके अपने सुख-दुख से बड़ा सवाल है। मोदी जी ने अपने आप को औसत भारतीय की इस भावना से जोड़ा। यह जुड़ाव सच्चा निकलता है या नहीं इसका फैसला तो आने वाले 5 साल करेंगे। राष्ट्रवाद की मोदी जी की परिभाषा सही है या नहीं इस पर दो राय हो सकती है। लेकिन सबक यह है कि राष्ट्रीयता की भावना को नजरअंदाज कर हम भारत के जनमानस से नहीं जुड़ सकते हैं। राष्ट्रवाद के प्रति परम्परागत रवैया छोड़ना होगा।

दूसरा सबक यह मिला है कि जनता सकारात्मकता चाहती है सिर्फ व्यक्तिगत आलोचना नहीं। इस चुनाव में मोदी जी ने वही कार्ड खेला जो इंदिरा गांधी ने 1971 में खेला था। अपने विरोधियों के बारे में इंदिरा गांधी कहती थीं 'यह कहते हैं इंदिरा हटाओ, मैं कहती हूँ गरीबी हटाओ'। जाहिर है जीत इंदिरा गांधी की हुई। इस बार भी तमाम मोदी विरोधी जनता की नजर में खाली मोदी जी के पीछे पड़ते हुए दिखाई दिए। सबक यह है कि खाली मोदी विरोधी से मोदी जी को हराया नहीं जा सकता। विरोध के लिए विरोध करने की शैली विपक्ष को छोड़नी होगी। उसे जनता के सामने कोई सकारात्मक विकल्प रखना होगा। तभी बात बनती नजर आएगी। तभी वह आकर्षित होगी।

तीसरा सबक यह है कि सामाजिक न्याय के नाम पर जातिवाद की राजनीति अपनी सीमा पर पहुंच गई है। उत्तरप्रदेश और बिहार में भाजपा विरोधी खेमाबंदी मुख्यतः एक जातीय खेमा बनती थी। ले-देकर उत्तरप्रदेश में भाजपा विरोधी गठबंधन एक यादव, मुसलमान और दलित का गठबंधन था। जातीय गणित के चलते इस गठबंधन को अजेय माना जा रहा था। लेकिन चुनाव ने यह दिखा दिया कि एक जातीय गठबंधन के खिलाफ दूसरा जातीय गठबंधन अपने आप बन जाता है। और सिर्फ जाति का गठबंधन बनाने वालों को उस जाति का भी पूरा वोट बैंक नहीं मिलता। ऐसा लगा कि विपक्ष सिर्फ जातीय गठबंधन के भरोस रहा और उसने कोई सकारात्मक विपक्ष लाने की कोशिश नहीं की। चौथा सबक सेकुलरवादी जमात के लिए है। इसमें कोई शक नहीं कि इस चुनाव परिणाम से सर्वधर्म समभाव के सपने को बहुत बड़ा आघात लगा है। पिछले कुछ सालों में बीजेपी ने बहुसंख्यक हिन्दू समाज में मुसलमानों के खिलाफ गहरी नफरत फैलाई है। स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा हिन्दू मुसलमान के सवाल पर भड़काऊ भाषण देने से अल्पसंख्यकों में जो खौफ बना है वह उनके विजयोपरांत भाषण से दूर होने वाला नहीं है। लेकिन साथ ही साथ इस चुनाव में सेकुलर राजनीति के पाखंड को भी जाहिर कर दिया। एक समय सिद्धांत और साहस से खड़ी हुई सेकुलर राजनीति आज मुसलमानों को बंधक बनाए रखने का पर्याय बन गई है। उस राजनीति को वोटर ने खारिज कर दिया। सबक यह नहीं है कि हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द के सपने को छोड़ दिया जाए, सबक यह है कि इस सपने की राजनीति को एक नई भाषा बोलना सीखना होगा।

लब्बोलुआब यह कि यह जनादेश बीजेपी और मोदी जी के पक्ष में है, लेकिन वोटर उनसे बंधा नहीं है। अगर आज राष्ट्र की चिंता और सकारात्मकता की चाह मोदी जी के पक्ष में झुकती है तो कल उनके खिलाफ भी हो सकती है। अगर आज जातिवाद और मुस्लिम वोट बैंक की राजनीति खारिज हुई है तो कल हिन्दुओं को डराने की राजनीति भी हराई का सकती है। दिक्कत यह है कि आज विपक्ष के पास न कोई चेहरा है, न कोई सपना। सबक साफ है : जनता को सिर्फ विपक्ष नहीं विकल्प चाहिए।

सभी के हित समानरूप से साधे जाए तो यह दुनिया के लोकतंत्र में नया अध्याय होगा

सबके साथ व विकास के बाद अब सबका विकास

-एन.के. सिंह, राजनीतिक विश्लेषक

एनडीए संसदीय दल की बैठक में प्रधानमंत्री चुने जाने के बाद नरेन्द्र मोदी का भाषण एक राजपुरुष (स्टेट्समैन) का उद्बोधन था, समाज-सुधारक का निरपेक्ष संत-भाव वाला उद्गार था और किसी कॉलेज के प्रिंसिपल का तरुणाई के वय वाले छात्रों को अनुशासन की सख्ती से वाकिफ कराने का उपक्रम था। शायद यह आने वाले वर्षों में दुनिया के राजनीतिक पंडितों के लिए एक नया सिद्धांत (डॉक्ट्रिन) है – समाज की विभिन्न इकाइयों के हितों का समाहन (अग्रीगेशन ऑफ इंटरेस्ट) यानी सभी के हितों को समानरूप से साधने का प्रयास।

मोदी के संदेश का अगर विवेचन करें तो पाएंगे कि पांच साल बाद उन्होंने 'सबका साथ, सबका विकास' का विस्तार करके तीसरा नारा और जोड़ा- 'सबका विश्वास'। हालांकि 'सबका साथ' अगर सही है तो विश्वास उसकी तार्किक परिणति है, लेकिन मोदी ने इसे कहा तो कोई तात्पर्य होगा। शायद अपने दूसरे शासनकाल में मोदी इसे सर्वसमावेशी विकास के रास्ते से पिछड़े वर्ग दलित के अलावा मुसलमानों के मन से भय हटाकर और विकास करके वह लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं। इस लक्ष्य के लिए जाहिर है उन्हें अनेक 'गड़करियों' की तलाश ज्यादा होगी और 'गिरिराजों' की संख्या कम करनी होगी। अरुण जेटली का अभाव भी अखरेगा।

राजनीतिशास्त्र के सिद्धांत के अनुसार सर्वहित साधन के लिए सबसे बेहतरीन तरीका एकल-पार्टी सिस्टम में होता है, क्योंकि इसमें बहुमत जीतने का दबाव नहीं होता लेकिन भारतीय संविधान के अनुसार द्विदलीय सिस्टम भी इसके लिए बेहद कारगर माना जाता है। लेकिन इसके विरोध में यह तर्क है कि प्रतियोगिता के अभाव में एकदलीय पद्धति में सरकार को बहुमत के लिए न तो विरोध की चिंता होती है न ही सबको साथ लेने का दबाव। द्विदलीय पार्टी सिस्टम में भी एक पेंच है। अमेरिकी द्विदलीय सिस्टम में हर राजनीतिक पार्टी सभी का वोट लेने के लिए उनके हितों को नजर में रखती है, लेकिन वही ब्रिटिश द्विदलीय सिस्टम में 19वीं सदी में केवल कुछ हितों को साधक बाकि को नजरअंदाज करना शुरू किया गया लगभग दोनों दलों द्वारा। दोनों के बीच के अलिखित औश्र गुमनाम समझौता होता था नस्ली और धार्मिक अल्पसंख्यकों के हितों को या तो नजरअंदाज करना का या यथासंभव दबाने का। यह सब अनकहे तरीके होता था जो कि लोकतांत्रिक मूल्यों के खिलाफ था। क्या मोदी इस नए प्रयोग में सफल होंगे या होने दिए जाएंगे और भारत में नया अनौपचारिक एकदलीय शासन चलेगा मोदी की व्यापक जन-स्वीकार्यता के सहारे? क्या विकास का भौतिक शास्त्र गैर-भौतिक हितों पर भारी पड़ेगा?

दुनिया के किसी भी विकासशील देश के प्रजातंत्र में यह अभी तक संभव नहीं हो सका है, क्योंकि भारत जैसे ही इन मुल्कों में भी संसाधन कम होते हैं और दबाव समूहों का उनपर दावा प्रबल, लिहाजा हमेशा एक संघर्ष चलता रहता है। यादव अपना आरक्षण छोड़ना नहीं चाहेंगे और अति-पिछड़ा वर्ग इतने साल के आरक्षण के बाद भी अपनी संख्या का दसवां हिस्सा भी सरकारी नौकरियों में नहीं पाता लिहाजा सरकार पर संख्यात्मक दबाव बढ़ रहा है। अब अगर इस तथ्य को देखते हुए सरकार अतिपिछड़ों के लिए आरक्षण के भीतर हीं आरक्षण करती है तो पिछड़ों में ही वह ज्यादा शिक्षित वर्ग, जो आरक्षण का लाभ दशकों से हजम कर रहा है नाराज होगा। तब मोदी का 'सबका विश्वास' का सिद्धांत फिर कसौटी पर होगा।

लेकिन इसके अलावा इसके अमल में आने और सफल होने की एक और शर्त है- क्या गैरभौतिक हित एक-दूसरे टकराएंगे नहीं? हालांकि मोदी ने इसका समाधान विकास के रास्ते बताया है यह कहकर कि सड़क बनेगी तो सबके लिए, अगर उज्ज्वला का लाभ मिलेगा तो सबको और अगर किसानों को मिलेगी तो टोपी और तिलक देखकर नहीं। प्रधानमंत्री चुनें जाने के दो दिन बाद वाराणसी के भाषण में प्रधानमंत्री स्वयं 'राजनीतिक विश्लेषकों' पर व्यंग्य करते हुए बोले 'ये लोग अंकगणित में फंसे रहे जबकि चुनाव लड़े या जीते जाते हैं रसायन-शास्त्र से'। अगर उनकी इस बात को आप्त-वचन मानकर इसे मोदी डॉक्ट्रिन के फ्रेम में रखकर देखा जाए तो चुनाव जीतने के तत्काल बाद की कुछ घटनाएं- गुजरात, हरियाणा, राजस्थान और उत्तरप्रदेश में- जिनमें अल्पसंख्यकों को टोपी, वन्देमातरम् न कहने के आधार पर सरे आम पीटा गया- रसायन शास्त्र बदलती है न कि अंकगणित। हालांकि इसमें गलती समाज के वर्गों की है। राजनीति शास्त्र के अनुसार अगर कोई समाज बहुदलीय व्यवस्था में रहने का आदी हो चुका है तो उसे एकल शासन पद्धति भले ही वह अनौपचारिक हो और हर वर्ग की सहमति से बना हो ज्यादा दिन चला नहीं सकती।

चूंकि कानून-व्यवस्था राज्य का विषय है और आज भाजपा देश के करीबी 19 राज्यों और 65 प्रतिशत आबादी पर शासन कर रही है, क्या मुख्यमंत्रियों को यह स्पष्ट संदेश जाएगा कि आपकी परफॉर्मेंस इससे नहीं आंकी जाएगी कि आपने कितने स्कूलों में योगा या वन्दे मातरम् शुरू करवा दिया है बल्कि इससे कोई अखलाक न मरने पाए, किसी की टोपी पर उंगली न उठे या गौमांस के नाम पर हर दाढ़ी वाले का टिफिन न देखा जाए। शायद सामाजिक रासायन की क्रिया के लिए यह पहली शर्त है। मोदी का कहना था कि पिछले तमाम दशकों में अल्पसंख्यकों के साथ छल करके उनके मन में एक 'डर' बैठाया गया था। प्रधानमंत्री अपने दूसरे कार्यकाल में उसमें 'छेद' करेंगे। उसका तरीका क्या होगा। लेकिन, इसमें कोई शक नहीं कि मोदी अगर इसमें सफल रहे तो यह दुनिया के लोकतंत्र के लिए एक नया अध्याय होगा और दुनिया के रसायन से ज्यादा अंकगणित को तरजीह देने वाले 'राजनीतिक पंडितों' (मोदी के शब्दों में) के लिए नया शोध-विषय होगा, जिसका शीर्षक होगा- पारस्परिक हित - टकराव के बावजूद विकास के जरिए सर्वसमहान का मोदी सिद्धांत।

मेरी जींस क्या देखते हो, संसद में अपराधियों के सफेद कुर्तों के दाग देखो

दो लड़कियां हैं। एक 29 साल की और दूसरी 30 साल की- मिमी चक्रवर्ती और नुसरत जहां। दोनों इस लोकसभा चुनाव में तृणमूल से चुनाव जीतकर संसद में पहुंची हैं। दोनों पहले दिन संसद गईं, आम लड़कियों की तरह जींस-शर्ट में संसद के सामने अपनी तस्वीर खींची और ट्विटर पर डाल दी।

यूं तो न जींस कोई बड़ी बात है और न फोटो डालना, लेकिन यह फोटो ऐतिहासिक थी, क्योंकि यह बदलते भारत की बदलती राजनीति की तस्वीर थी। जींस-शर्ट में संसद पहुंची लड़कियां देश की आधी आबादी और उसके पहनावे का प्रतीक थीं, वो आजादी, आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास का प्रतीक थीं। लेकिन हमारे मुल्क को तो अब भी यही मुगालता है कि देश मर्द चलाते हैं। औरतें पारंपरिक परिधान में सिर झुकाए ही अच्छी लगती हैं। तो जैसा कि होना ही था, लोगों को यह बात नागवार गुजरी और उन्होंने ट्रोलिंग शुरू कर दी। लोग बोले, 'ये देखिए, संसद का फैशन शो।' कोई और वक्त होता तो शायद लड़कियां डर जातीं। सोचतीं कि घर पर भले जींस पहनें, पब्लिक में तो साड़ी वाली पारंपरिक छवि ही बनाकर रखनी होगी। लेकिन ये क्या, इन युवा सांसदों ने ट्रोल की सार्वजनिक रूप से जमकर धुनाई कर डाली।

वो बोलीं, 'हमारी जींस से लोगों को दिक्कत है, उन दागी सांसदों से नहीं, जिन्होंने संतों जैसे कपड़े पहन रखे हैं, लेकिन जिन पर आपराधिक मामले चल रहे हैं और जो सिर से लेकर पांव तक भ्रष्टाचार में डूबे हैं।' उनकी राय बिल्कुल दो-टूक थी। 'हम युवाओं का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। हम वही कपड़े पहनते हैं, जो ज्यादातर युवा पहन रहे हैं। तो इसमें दिक्कत क्या है।' यही तो दिक्कत की बात है कि उन्हें दिक्कत क्या है। उन्हें ओडिशा की विधानसभा में पोर्न देखते पकड़े गए विधायकों से दिक्कत नहीं, जेल जाकर आए अपराधियों से दिक्कत नहीं, घोटालों के सरताज सांसदों से दिक्कत नहीं, उन्हें दो युवा लड़कियों की जींस से दिक्कत है।

दिक्कत तो होगी ही। वो लड़कियां हैं और ये देश, जिसकी मर्दवादी आबो-हवा अभी बस बदलनी शुरू हो हुई है। दिक्कत तो होगी, जब लड़कियां उनके बनाए नियमों को तोड़ती, आजाद उड़ती, आत्मविश्वास से चमकती, सिर उठाकर चलती और अपने दिमाग से फैसले लेती दिखेंगी। लेकिन अब उनकी दिक्कत और बढ़ गई है, क्योंकि उनकी दिक्कत से लड़कियों को कोई दिक्कत ही नहीं हो रही। वे जींस पहनने के लिए लड़कियों को ट्रोल करते हैं तो लड़कियां डरने की बजाय पलटकर मुंहतोड़ जवाब देने लगती हैं।

औरतों के कपड़ों और चरित्र पर उंगली उठाने का मर्दाना मनोविज्ञान अब तक कैसे काम करता था? ऐसे ही न कि लड़की पर उंगली उठाओ तो वह डर जाएगी। खुद को बचाने की कोशिश करेगी। ये लड़कियां तो ऐसा कुछ नहीं कर रहीं। वे तो कह रही हैं, मेरी जींस क्या देख रहे हो, अंदर बैठे अपराधियों के सफेद कुर्ते देखो, उन पर कितने दाग हैं। वो कल फिर जींस ही पहनकर आएंगी। वैसे ही काला चश्मा लगाकर, भरोसे और उम्मीद से जमीन पर पैर जमाती हुई। ये बदलते हिन्दुस्तान की लड़कियां बाकी लड़कियों का प्रतीक हैं। ये हम लड़कियों की बेहतर जिंदगी की उम्मीद हैं।

तीन दशक पुरानी मंडल-मंदिर राजनीति का अंत

-: शेखर गुप्ता :-

ठीक तीन दशक के बाद भारतीय राजनीति में एक युग का अंत हुआ और नया युग शुरू हुआ है। यहां नेहरू-गांधी वंश के पतन और एकमात्र नए ध्रुव के रूप में नरेन्द्र मोदी के उदय की बात नहीं हो रही है। इस राजनीतिक रूपांतरण को समझने के लिए यह बहुत संकुचित दृष्टि होगी। हम मंडल-मंदिर राजनीति के अंत और मोदी युग की शुरुआत की बात कर रहे हैं।

वर्ष 1989 में ठीक इसी वक्त के आसपास 1984 में राजीव गांधी द्वारा दो सीटों तक सीमित कर दी गई भाजपा को उनके कार्यकाल के अंतिम वर्ष में वापसी का अवसर दिखने लगा था। राजीव के विश्वस्त और रक्षामंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने विद्रोह कर दिया और वे राजीव की जगह लेने वाले गठबंधन के स्वाभाविक नेता नजर आने लगे। वे भाजपा के बिना ऐसा नहीं कर सकते थे। भाजपा के सबसे तेज दिमाग नेता लालकृष्ण आडवाणी हमेशा के लिए सत्ता में भागीदारी स्वीकारने को तैयार नहीं थे। इसके लिए भाजपा को 'भ्रष्ट' राजीव को हटाने के उन दिनों के मुद्दे आगे का एजेंडा चाहिए था। उन्होंने अयोध्या का मुद्दा लेकर उसमें आक्रामक राष्ट्रवाद व हिन्दू जागरण को मिलाया। उसी साल बाद में आडवाणी ने राजीव को रोकने में विपक्ष की मदद की। वीपी सिंह, जिनके जनता दल ने 143 सीटें जीती थीं, उन्हें राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। जरूरी आंकड़े दो बाहरी समर्थकों वाम दलों व भाजपा ने मुहैया कराए। जनता दल व उसके छोटे सहयोगियों की ज्यादातर सीटें पुराने समाजवादियों व कांग्रेस के विद्रोहियों से आई थीं। उन्हें भाजपा नापसंद थी। कश्मीर में अशांति से निपटने को लेकर मतभेद से परस्पर बेचैनी बढ़ी। खासतौर पर तब जब गृहमंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद की बेटी रुबैया सईद का कश्मीरी पृथकतावादियों ने अपहरण कर लिया और सरकार झुक गई। सिंह और उनके ज्यादातर समाजवादी/लोहियावादी विचारक भाजपा व कांग्रेस दोनों के विरोध में नई राजनीति खड़ी करने में लग गए। इसके लिए ओबीसी को आरक्षण की सिफारिश करने वाले मंडल आयोग की लगभग दशकभर पुरानी रिपोर्ट निकालकर लागू कर दी गई।

अनुसूचित जाति-जनजातियों को 22.5 प्रतिशत आरक्षण से पहले ही नाराज ऊंची जातियों ने वीपी सिंह के खिलाफ लड़ाई छेड़ दी। हिंसक आंदोलन में ऊंची जातियों के 63 छात्रों ने आत्महत्या कर ली। हिन्दू समुदाय में जाति युद्ध शुरू हो गया। वीपी सिंह व उनके समाजवादियों ने नया ओबीसी वोट बैंक बना लिया। इससे भाजपा के सामने हिन्दू वोट बंटने का खतरा पैदा हो गया। उसके बाद से मंडल बनाम मंदिर के संघर्ष ने भारतीय राजनीति को परिभाषित किया है। हिन्दी प्रदेशों में पुराने नेताओं ने अपने जातिगत वोटबैंक बना लिए। कांशीराम और मायावती भी इसमें शामिल होकर दलितों को ले उड़े। मुस्लिम इन जातिगत गुटों की ताकत बढ़ाते तो ये गुट भी मुस्लिमों की ताकत बढ़ाते और मिलकर प्राय: भाजपा को मात देते। राष्ट्रीय स्तर पर ये कांग्रेस से गठजोड़ करके भाजपा को सत्ता से बाहर रखते। 2019 के जनादेश ने इसका अंत कर दिया है। मंदिर ने मंडल को मात दी, ऐसा कहें तो मूल मुद्दे की अनदेखी होगी। ज्यादा सही यह है कि नरेन्द्र मोदी और अमित शाह के मातहत मंदिर ने मंडल को समाहित कर लिया। एक पूर्ण कार्यकाल, पूर्ण बहुमत के साथ देश के पहले ओबीसी प्रधानमंत्री के रूप में मोदी के उदय और दूसरा कार्यकाल जीतने से मंडल वोट बैंक टूट गया। यह कैसे हुआ? इसके नतीजे क्या होंगे? और इसके खिलाफ नया ध्रुव निर्मित करने के लिए क्या करना होगा? नतीजों की शाम पार्टी कार्यकर्ताओं को दिए मोदी के भाषण को याद करें, उन्होंने दो बातें कहीं। एक, देश में केवल दो जातियां हैं एक गरीब और दूसरे वे जो गरीबों की मदद के लिए संसाधन जुटाने में सक्षम हैं। दो, 'धर्मनिरपेक्षता' का मुखौटा लगाने वालों की हार हुई है। राजनीतिक संदेश यह है कि वह वक्त गया जब हिन्दुओं को बांटकर मुस्लिम वोटों की सहायता से सत्ता पाई जाती थी।

मोदी ने ही इसे संभव बनाया। विपक्ष को दोष देने का मतलब नहीं है। चुनाव पूर्व गठबंधन तब काम देते हैं जब आप किसी विचारधारा या पार्टी से लड़ रहे हों। आज के मोदी अथवा 1971 की इंदिरा गांधी जैसे लोकप्रिय व्यक्तित्व से लड़ने में वे काम नहीं आते। मोदी और शाह पूरी सक्रियता के साथ ओबीसी व दलितों तक पहुंचने में कामयाब रहे। उत्तरप्रदेश में मायावती और मुलायम क्रमश: जाटव व यादवों के नेता भर रह गए हैं। शेष दल भाजपा की ओर झुक रहे हैं। चूंकि इसके पास पहले ही हिन्दू राष्ट्रवादी उच्च जाति का वोट बैंक है, ये अतिरिक्त आंकड़े उसे विनाशक ताकत देते हैं। बिहार गैर-भाजपाई ओबीसी नेता (नीतिश कुमार) को सौंप दिया गया है, एक बड़े व ताकतवर दलित ग्रुप के नेता रामविलास पासवान को समायोजित कर लिया गया है।

अब मोदी के पास अपनी नई इबारत लिखने का मौका है। एक संभावना यह है। चूंकि उच्च वर्ग की वफादारी को लेकर वे आश्वस्त रह सकते हैं, इसलिए केन्द्र व राज्यों में वे अधिक ओबीसी व दलित नेताओं को मजबूती दे सकते हैं। बिहार में वे पहले ही यादव नेताओं का मजबूत गुट खड़ा कर रहे हैं। इनमें संजय पासवान उल्लेखनीय हैं। उत्तरप्रदेश में भी कुछ नेता तैयार किए जाएंगे। चूंकि उनके नेतृत्व में हिन्दू पर्याप्त सशक्त महसूस करते हैं तो वे मुस्लिमों की ओर हाथ बढ़ा सकते हैं। वह राजनीति खत्म हो गई जो आपको राजनीतिक प्रभाव देती थी। इसलिए मेरी छत्रछाया में आ जाओ। इसे भारत में राजनीति का अंत न समझें, सिर्फ मंडल-मंदिर का युग समाप्त हुआ है। मोदी को चुनौती देने वाले नेता/नेताओं को नई राजनीति खोजनी होगी। बेशक, कुछ को अब भी उम्मीद होगी कि जाति फिर उसे विभाजित कर देगी, जिसे आस्था ने एकजुट किया है। नई राजनीति कैसे निर्मित होगी और कौन करेगा? इस चुनाव परिणाम की सतह के नीचे दृष्टि डालें। भाजपा के 303 और कांग्रेस के 52 के नीचे दो महत्वपूर्ण आंकड़े हैं। भाजपा के वोट 2014 के 17.1 करोड़ से बढ़कर 22.6 करोड़ हो गए हैं। कांग्रेस के वोट 10.69 से बढ़कर 11.86 करोड़ हो गए हैं। 2014 में दोनों के मिलकर 27.79 करोड़ वोट थे, जो अब 34.46 करोड़ हो गए हैं। यह 2014 के 50.3 प्रतिशत की तुलना में 57 फीसदी होते हैं। मंडलवादी व क्षेत्रीय दल जो वोट ले गए थे वे राष्ट्रीय दलों की ओर लौटने लगे हैं। इसलिए आप चाहे कांग्रेस को हल्के में लेंगे पर मोदी और शाह ऐसा कतई नहीं करेंगे।

'लक्ष्मी' जिस पर जितनी मेहरबान उसकी जीत उतनी ही आसान

जयपुर। चुनावी राजनीति में धनबल के प्रभाव को लोकसभा चुनाव के परिणामों से समझा जा सकता है। परिणाम बताते हैं कि प्रत्याशी जितना अधिक धनावन है उसके जीतने की संभावना उतनी ही बढ़ जाती है। लगभग एक तिहाई प्रत्याशी ऐसे जीतने में सफल रहे जो कि 5 करोड़ या उससे अधिक संपत्ति के मालिक हैं। जबकि इसके विपरीत 10 लाख से कम संपत्ति वाले प्रत्याशियों की सक्सेस रेट 0.3 फीसदी रही है।

इसी तरह संसद में पहुंचने वाले करोड़पति सांसदों के ग्राफ में भी निरंतर इजाफा हो रहा है। 2004 से 2019 के बीच में करोड़पति सांसदों की संख्या 58 फीसदी बढ़ गई है। 2004 में जहां जीतने वाले 30 फीसदी सांसद ही करोड़पति थे तो वहीं 2019 में करोड़पति सांसदों की संख्या 88 फीसदी पहुंच गई। राजनीतिक दलों में बीजू जनता दल और कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी) के सबसे कम सांसद करोड़पति हैं। इनके लगभग 67 फीसदी सांसद करोड़पति हैं। साथ ही ओडिशा में ही सबसे कम करोड़पति सांसद बने हैं। 15 राज्य व केंद्रशासित प्रदेश ऐसे रहे जहां से जीते सभी सांसद करोड़पति हैं।

दक्षिण के राज्यों में सबसे अधिक करोड़पति सांसद

दक्षिण भारत के राज्यों के सांसद अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक संपन्न हैं। इन राज्यों में करोड़पति सांसदों का औसत भी देश के अन्य राज्यों के मुकाबले अधिक है। साथ ही दक्षिण भारत की क्षेत्रीय पार्टियों के सांसदों की संपत्ति का औसत भी अन्य दलों के अपेक्षा अधिक है। इसका प्रमुख कारण इन राज्यों की राजनीति में उद्योगपतियों का सक्रिय होना है। उद्योगपतियों की राजनीति में सक्रियता से आम आदमी का चुनाव लड़ना मुश्किल होता जा रहा है। आंध्रप्रदेश की वायएसआर कांग्रेस पार्टी के सांसदों की औसत संपत्ति 54 करोड़ रुपए से अधिक है जो कि देश के किसी भी राजनीतिक दल के सांसदों का सर्वाधिक औसत है। इसी तरह से तमिलनाडु की द्रमुक के सांसदों की संपत्ति का औसत 24 करोड़ से भी अधिक है।

ओ३म्

स्वामी रुद्रवेश भजनोपदेशक महाविद्यालय

स्थान :- गुरु ब्रह्मानन्द आश्रम सफीदों-126112, जीन्द (हरियाणा)

ईमेल :- sswaminityanand@gmail.com

महर्षि दयानन्द सरस्वती

गुरु ब्रह्मानन्द

स्वामी रुद्रवेश

आपको जानकर अति हर्ष होगा कि आजादी आन्दोलन के महान कवि एवं वेद प्रचारक (गायक) स्वामी भीष्म जी महाराज के सुयोग्य एवं गायक शिष्य श्रद्धेय स्वामी रुद्रवेश जी के नाम (स्मृति) में एक भजनोपदेशक महाविद्यालय सफीदों, जीन्द में प्रारम्भ किया जा रहा है।

आर्य जगत् में लम्बे समय से भजनोपदेशक विद्यालय की कमी आर्यों के हृदय में खटक रही है, हमने आपके विश्वास और सहयोग के बल पर इस अति महत्त्वपूर्ण कार्य को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प लेकर यह पुनीत कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। प्रवेश प्रारम्भ हो चुका है, स्थान सीमित है, शीघ्र सम्पर्क करें।

इस भजनोपदेशक महाविद्यालय का उद्घाटन समारोह गुरु पूर्णिमा 16 जुलाई, 2019 को प्रातः 9 बजे से 2 बजे तक रहेगा, जिसमें आर्य समाज के राष्ट्रीय विद्वान्, आर्य संन्यासी एवं नेता पहुँच रहे हैं। सभी सक्रिय कार्यकर्ता सादर आमंत्रित हैं।

निवेदक

ब्र. रामस्वरूप, प्रधान, 9416062288
स्वामी नित्यानन्द, संचालक, 8053662657
आचार्य कमलेश शास्त्री, आचार्य, 9813120744
पं. रामनिवास आर्य, संगीताचार्य, 9416437317

मोदी के नए अवतार से शुरू राजनीति में नया दौर

संदर्भ... सेंट्रल हॉल के भाषण में विरोधियों को 'अपना' कहकर लोकतांत्रिक मानसिकता का परिचय दिया

-: वेदप्रताप वैदिक :-

नरेन्द्र मोदी भारत के ऐसे पहले प्रधानमंत्री हैं, जो गैर-कांग्रेसी हैं, लेकिन जिन्हें लगातार दो पूरी अवधियां मिली हैं। ऐसी दो पूर्ण अवधियां अटलजी को भी नहीं मिलीं। मोदी इस अर्थ में जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी और मनमोहन सिंह की श्रेणी में आ गए हैं। यह ठीक है कि नेहरू, इंदिरा और राजीव गांधी को जितनी सीटें संसद में मिलीं, उतनी मोदी को नहीं मिलीं, लेकिन 300 का आंकड़ा पार करना किसी विपक्षी प्रधानमंत्री के लिए अपने आप में ऐतिहासिक उपलब्धि है। इसका श्रेय बालाकोट हमले, किसानों और गरीबों को मिली वित्तीय सुविधाओं, सरकार के कुछ जन-अभियानों और भाजपा कार्यकर्ताओं के व्यवस्थित जन-संपर्क को दिया जा रहा है, लेकिन इस तरह के कई लोक-कल्याणकारी काम तो हर सरकार करती ही है। मोदी की इस अप्रत्याशित विजय के जो कारण मुझे समझ में आते हैं, वे ये हैं:

एक, 2019 के चुनाव में पूरा विपक्ष ऐसा लग रहा था, जैसे वह बिना दूल्हे की बारात हो। विपक्ष में नेता तो कई थे, लेकिन वे सब प्रांतीय थे। उनमें से कई मोदी से कहीं अधिक वरिष्ठ और अनुभवी भी थे, लेकिन उनमें प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार कोई भी नहीं था। जनता अपनी वरमाला किसे पहनाती? कितनों को पहनाती? दो, यह चुनाव ही नहीं, सभी चुनाव कहने के लिए संसदीय होते हैं, लेकिन उनका स्वरूप अध्यक्षात्मक होता है अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव की तरह! यह चुनाव तो पूरी तरह से अध्यक्षात्मक था यानी मतदाता ने वोट डालते वक्त अपने इलाके के उम्मीदवार पर नहीं बल्कि उसकी पार्टी के नेता पर नजर रखी। ऐसे नेता सिर्फ दो ही थे। एक नरेन्द्र मोदी और दूसरे राहुल गांधी। दोनों में कोई तुलना थी क्या? राहुल तो अपने प्रांत में ही अपनी पार्टी और खुद को ले बैठे। अखिल भारतीय नेता होना तो दूर की कौड़ी है। तीन, ये चुनाव संसद का था, विधानसभाओं का नहीं। इसीलिए प्रांतीय नेताओं की श्रेष्ठता और योग्यता अपने आप दरकिनार हो गई। लोग सोचते थे कि प्रांतीय पार्टी को वोट देकर हम अपना वोट बेकार क्यों करें? आडिशा में क्या हुआ? विधानसभा में नवीन पटनायक और लोकसभा में लोगों ने मोदी को चुना। राजस्थान, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के चुनावों में कांग्रेस को सत्तारूढ़ कराने वाली जनता ने इस संसदीय चुनाव में उसे बुरी तरह से रद्द क्यों कर दिया?

चार, भारत मूलतः मूर्तिपूजक देश है। भाजपा के पास नरेन्द्र मोदी नामक भव्य मूर्ति थी। वह सगुण, साकार, मुखर, बोलती-चालती मूर्ति थी। उसे विपक्ष के नेता संकीर्ण, साम्प्रदायिक, मौत का सौदागर, चोर, घमंडी आदि चाहे जो कहें लेकिन विपक्ष के पास क्या था? एक निर्गुण, निराकार, तुतलाता-हकलाता विकल्प था। देश क्या करता? मजबूरी का नाम नरेन्द्र मोदी! मोदी की टक्कर में यदि एक भी अखिल भारतीय नेता होता तो भाजपा को लेने के देने पड़ जाते। राजीव गांधी को 400 से ज्यादा सीटें मिली थीं, लेकिन विश्वनाथ प्रतापसिंह जैसे नेता ने उन्हें 200 पर उतार दिया। पांच, इस चुनाव अभियान में मोदी का सबसे ज्यादा फायदा राहुल गांधी ने किया। 'चौकीदार चोर है' का नारा देकर राहुल ने तटस्थ मतदाता की सहानुभूति भी खो दी। छह, विपक्ष के नेता चाहे प्रांतीय, जातिवादी व कमजोर रहे हों, लेकिन यदि वे एकजुट हो जाते तो मोदी की मुसीबत हो सकती थी। तब गठबंधन सरकार बनती। मोदी को स्पष्ट बहुमत मिल ही नहीं सकता था, लेकिन विपक्ष के नेताओं ने अपनी-अपनी बीन अलग-अलग बजाई, जिसके कारण जनता ने यह भी सोचा कि सत्ता के खातिर ये विपक्षी एक हो भी गए तो इनकी सरकार चलेगी कितने दिन? मोदी की सरकार ने चाहे नोटबंदी जैसी भयंकर भूल की हो, जीएसटी लागू करने में कितनी ही असावधानियां की हों, रोजगार घटा दिए हों, आतंकवाद पर काबू न पाया हो, साम्प्रदायिक दुर्भाव फैलने दिया हो, अपने वादों को पूरा नहीं किया हो, लेकिन वह विपक्ष के भानुमति के कुनबे से तो बेहतर है। सात, इस चुनाव ने जातिवाद-प्रांतवाद को तो पछाड़ा ही, लेकिन धर्म-निरपेक्षता को भी दरी के नीचे सरका दिया। नेताओं ने हिन्दू वोट पटाने के लिए क्या-क्या नौटंकियां नहीं कीं? इसमें मोदी को कौन मात दे सकता था?

लेकिन अब मुख्य प्रश्न यही है कि मोदी की यह प्रचंड विजय क्या विपक्ष को लकवाग्रस्त कर देगी और उन्हें तानाशाह बना देगी? ये दोनों डर निराधार हैं। विपक्ष के 200 सांसद किसी भी सरकार को पटरी पर चलाने के लिए काफी से भी ज्यादा है। मुझे याद है कि 55-60 साल पहले डॉ. राममनोहर लोहिया की संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के 5-7 संसद सदस्य ही काफी थे, प्रधानमंत्री की कुर्सी हिलाने के लिए। यदि विभिन्न पार्टियां अपना महासंघ बना लें, वोट की राजनीति के साथ-साथ जन-जागरण और जन आंदोलन की राजनीति करें तो वे न केवल सत्तारूढ़ दल को पटरी पर रख सकेंगी बल्कि उस पर कठोर अंकुश भी लगा सकेंगी। किसी भी स्वस्थ लोकतंत्र के लिए सबल विपक्ष नितांत आवश्यक है।

जहां तक मोदी के तानाशाह बनने का अंदेशा है, उसका निराकरण तो संसद के सेंट्रल हॉल में दिए गए उनके अद्‌भुत भाषण से ही हो जाता है। उन्होंने अपने पार्टी-कार्यकर्ताओं के लिए जितने सम्मान और विनम्रता के शब्द कहे, मेरी याद में किसी भी प्रधानमंत्री ने नहीं कहे। उन्होंने आडवाणीजी और जोशीजी के पांव छूकर अपनी अहंवादी छवि को सुधार लिया। पेड़ पर ज्यों ही फल लगते हैं, वह झुक जाता है। उन्होंने अल्पसंख्यकों के भले की बात करके सच्चे हिन्दुत्व को प्रतिपादित किया। उन्होंने प्रज्ञा का नाम लिए बिना अपने सांसदों को जुबान पर लगाम रखने के लिए भी कहा।

मुझे ऐसा लगा कि मोदी का यह नया अवतार है। उन्होंने केन्द्र और प्रांतों की आकांक्षाओं में समरसता स्थापित करने और विरोधियों को भी 'अपना' कहकर वास्तविक लोकतांत्रिक मानसिकता का परिचय दिया। उन्होंने 'गांधी, लोहिया, दीनदयाल' के विचारों की याद दिलाई और 1857 के आदर्शों को दोहराया। 1942 और 1947 के बीच हुए जन-जागरण और जन-आंदोलनों की तरह अगले पांच साल भारत की जनता को लगाने का संकल्प भी यह विश्वास बंधाता है कि अब देश में एक नई राजनीति का जन्म हो रहा है। पिछली बार उनकी विजय का मूल कारण वे स्वयं नहीं, कांग्रेस का भ्रष्टाचार था। इस बार उन्हों जो विजय मिली है, वह अपने दम पर मिली है। आशा है कि मोदी अब अपनी कथनी को करनी में बदलेंगे। वे अत्यंत सफल प्रचार मंत्री सिद्ध हुए हैं, लेकिन अब वे महान प्रधानमंत्री सिद्ध होकर दिखाएंगे।

कब तक धैर्य रखेगी 'आर्थिक जाम' में फंसी आबादी!

- मोहन गुरुस्वामी, नीति विश्लेषक

विकास अपरिहार्य रूप से एक ओर विजेता तैयार करता है तो दूसरी ओर पराजित। समाज में, कम से कम शुरुआती चरण में तो जरूर, इसके चलते विषमताएं जन्म लेती हैं। भारत में आज सहज ही इसकी पुष्टि होती है। आय में वास्तविक अंतर सरकारी आंकड़ों की तुलना में कई गुना है। कई अर्थशास्त्री सैद्धांतिक तौर पर इसे जिनी गुणांक कहते हैं, जिससे असमानता आंकी जाती ह। यह देश में 0.65 से अधिक है और दुनिया में अधिकतम में से एक भी। यह तथ्य कड़वी सच्चाई उजागर करता है कि जीडीपी में कृषि की हिस्सेदारी 13 फीसदी ही रह गई है, जबकि देश की करीब 60 फीसदी आबादी की आजीविका का स्रोत कृषि ही है। एक ओर भारत बड़ी वैश्विक अर्थव्यवस्था बनने की दौड़ में शामिल है, तो दूसरी ओर बहुत बड़ा वर्ग पीछे छूट रहा है। वास्तविकता बहुत कठोर है। जीडीपी में बचत के अनुपात का ग्राफ 2012 से गिर रहा है। कर संग्रहण और निवेश का अनुपात भी गिर रहा है। इसके बावजूद मोदी को प्रचंड जीत हासिल हुई है।

1973 में यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले के जाने-माने अर्थशास्त्री एल्बर्ट ओ. हर्शमैन का शोधपत्र 'आर्थिक विकास के क्रम में आय की असमानता को लेकर बदलती सहनशीलता' प्रकाशित हुआ था और इसी के साथ समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों की डिक्शनरी का अहम हिस्सा बन गया था 'टनल इफेक्ट'। हर्शमैन का तर्क था, 'विकास के शुरुआती चरण में विषमता बढ़ने के साथ सहनशीलता का स्तर भी ऊंचा रहता है, क्योंकि लोगों को उम्मीद रहती है कि एक दिन विषमता दूर होगी। यदि अंतर कम नहीं होता, तो एक समय ऐसा आता है जब लोग बर्दाश्त करना बंद कर देते हैं।'

उन्होंने दो लेन वाली टनल में ट्रैफिक जाम में फंसे कार ड्राइवरों का उदाहरण दिया। जब एक लेन का ट्रैफिक बढ़ने लगता है, तो दूसरी लेन के ड्राइवर कुछ समय जाम खुलने की आस में धैर्य रखते हैं, लेकिन जब ऐसा नहीं होता तो सब्र का बांध टूट जाता है और वे दूसरी लेन में जाने की कोशिश करने लगते हैं और इसी से अराजकता पसर जाती है। आज स्पष्ट है कि भारत में एक लेन का ट्रैफिक ही आगे बढ़ रहा है और इतनी बेहतर स्थिति में है कि ऑक्सफैम के एक अध्ययन के मुताबिक पिछले पांच साल के विकास का 73 फीसदी हिस्सा महज 1 फीसदी आबादी की झोली में गया है। अब असल चुनौती उच्च आय वर्ग को विस्तार देने की ही है। यह जितना कहना आसान है, उतना करना नहीं, क्योंकि हमारा 80 फीसदी श्रमिक वर्ग का अधिकांश भाग अकुशल और शिक्षित है और असंगठित और अशिक्षित है और असंगठित क्षेत्र पर निर्भर है।

अर्थव्यवस्था की मुख्य समस्या यानी निम्न उत्पादकता को दूर किए बिना किसी आय अंतरण योजना से वे सिर्फ उपभोग चक्र में उलझ कर रह सकते हैं। एकमात्र समाधान रोजगार सृजन है और वह भी श्रम पर जोर देने वाले क्षेत्रों में जैसे आवासीय और ग्रामीण अवसंरचना निर्माण। इसके लिए सरकार को पूंजीगत व्यय बहुत बढ़ाना होगा। मोदी 1.0 सरकार का एक अहम कार्यक्रम स्वच्छ भारत अभियान आज सीवेज की कमी और पानी की किल्लत के चलते अपने मुकाम से पिछड़ रहा है। कारण है सीनीय निकाय का जलापूर्ति और सेनिटेशन संबंधी अवसंरचना पर ध्यान न देना। मोदी सरकार को इसे प्राथमिकता में शामिल करना होगा।

निश्चित ही भारत की अगुवाई दुनिया में सबसे मुश्किल काम है। जरूरत है कि रोजगार सृजन और आय की असमानता में कमी लाकर आर्थिक विकास की दर बढ़ाई जाए। एक लेन 2000 से ही आगे बढ़ रही है, जब भारत ने उच्च जीडीपी वृद्धि के प्रक्षेप पथ पर कदम रखा था। लेकिन टनल में थमी हुई लेन में फंसी आबादी की सहनशीलता अब खत्म होने को है। ऐसे में वाल यही है कि रुकी हुई लेन को आगे बढ़ाने के लिए प्रधानमंत्री मोदी के पास कितना समय बचा है?

पंजीयन संख्या : RAJHIN(RNI)2000/2567
डाक पं. सं. : Jaipur City/264/2018-20

शिक्षा क्षेत्र से ही बदलेगी देश की तस्वीर

पूरे शिक्षा जगत की तस्वीर कई स्तरों पर बदलने की जरूरत है। उचित तो यही होगा पाठ्यक्रमों में कुछ शब्द, कुछ अध्याय मात्र बदलने की परंपरा से मुक्ति पाते हुए कुछ बड़े परिवर्तनों की ओर बढ़ा जाए।

-**प्रेमपाल शर्मा,** लेखक व प्रशासक

खुशी की बात यह है कि 30 मई को नई सरकार के शपथ ग्रहण करने से पहले ही 100 दिन के जो लक्ष्य निर्धारित किए गए, उनमें शिक्षा को भी स्थान दिया गया है। देखा जाए तो नई सरकार और शिक्षा का नया सत्र साथ-साथ शुरू हो रहे हैं। यदि सरकार वास्तव में देश की तस्वीर बदलने के लिए गंभीर है औश्र जनता के लिए उसकी अपेक्षाओं के अनुरूप काम करना चाहती है तो शिक्षा से बेहतर दूसरा क्षेत्र नहीं हो सकता। नेल्सन मंडेला से लेकर दुनिया के हर राजनीतिक नेता, विचारक ने बड़े परिवर्तन के लिए शिक्षा के महत्व को समझा है। पूरे देश में इस समय दाखिले की हलचल है। स्नातक, स्नातकोत्तर, इंजीनियरिंग, कानून प्रबंधन, डॉक्टरी आदि हर क्षेत्र में। लेकिन गौर कीजिए सभी स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में दाखिल की प्रवेश परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा है। 27 मई को देश के विख्यात जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रवेश परीक्षा थी, लेकिन इसमें वही सफल हो सकता है जो अंग्रेजी माध्यम से पढ़ा हो।

क्या चंपारण, छत्तीसगढ़, भुज, अजमेर, तेलंगाना, लखनऊ से लेकर लातूर का विद्यार्थी, जो अपनी-अपनी भाषाओं में पढ़ा है, कभी जेएनयू में दाखिल के बारे में सोच सकता है? बिहार के एक छात्र अंकित दुबे ने कुछवर्ष पहले बताया था कि उसने बिहार से राजनीति शास्त्र ऑनर्स में स्नातक किया था। जेएनयू में दाखिल के लिए प्रवेश परीक्षा में लगातार दो बार बैठने के बावजूद भी इसलिए सफल नहीं हुआ कि वह अंग्रेजी में उत्तर नहीं दे सकता था। हर मंच पर ऐसे विद्यार्थी आवाज उठाते, अनुरोध करते रहे हैं, लेकिन कोई सुनने वाला नहीं। अच्छा हो, नई सरकार न केवल जेएनयू, बल्कि दिल्ली यूनिवर्सिटी समेत सभी लॉ यूनिवर्सिटी आदि कॉलेजों में भी प्रवेश परीक्षाओं में भारतीय भाषा को जगह दे।

हमें नहीं भूलना चाहिए कि मोदी ओर शाह की जोड़ी की सफलता में सबसे अधिक योगदान उनकी अपनी भाषा हिंदी-गुजरात के सहज प्रवाह का है, जन-जन तक उसी के मुहावरे और बोली में पहुंचने की क्षमता का है। 2014 में भी भाषा की क्षमता के आधार पर ही उन्होंने देश का दिल जीता था। यहां केवल चुनाव जीतने का प्रश्न नहीं है। पिछली बार जब मोदी प्रधानमंत्री बने, सर्वोच्च अंग्रेजीदां नौकरशाह भी रातों-रात अपनी बात हिन्दी में समझने समझाने लगे थे। हालांकि दिल्ली की फाइलों पर अब भी अंग्रेजी उसी तरह हावी है। नई सरकार से अपेक्षा है कि भारतीय भाषाओं के लिए कुछ सार्थक कदम उठाए जाएं।

संघ लोक सेवा आयोग पर अंग्रेजी का साया बहुत गहरा है। हाल ही में घोषित सिविल सेवाओं के परिणाम भारतीय भाषाओं के एकदम खिलाफ हो गए हैं- मात्र चार प्रतिशत। दरअसल 2011 में तत्कालीन सरकार के सिविल सेवाओं की प्रारंभिक परीक्षा पर अंग्रेजी लाद देने के दुष्परिणाम आज तक हावी हैं। आयोग की अन्य राष्ट्रीय परीक्षाओं जैसे वन सेवा, इंजीनियरिंग सेवा, चिकित्सा सेवा में भी भारतीय भाषाओं की शुरुआत तुरंत की जाए। वरना अंग्रेजी और अमीरी के गठजोड़ में सिविल सेवाएं अंग्रेजी और अमीरी के द्वीप बनकर रह जाएंगी। क्या यह उस जनादेश के खिलाफ नहीं होगा, जिसका आधार जनता से वोट मांगने के लिए इस्तेमाल की गई भाषा थी।

पूरे शिक्षा जगत की तस्वीर कई स्तरों पर बदलने की जरूरत है। उचित तो यही होगा पाठ्यक्रमों में कुछ शब्द, कुछ अध्याय मात्र बदलने की परंपरा से मुक्ति पाते हुए कुछ बड़े परिवर्तनों की ओर बढ़ा जाए। हर पैमाने पर हम अमरीका, चीन से लेकर यूरोप के मुकाबले बहुत पीछे हैं। विकास का रास्ता केवल विज्ञान की बेहतर शिक्षा, वैज्ञानिक चेतना, तर्कशक्ति के बूते ही संभव है। अतीत के सभी कालखंड में हमारी उपलब्धियां रही होंगी, लेकिन हम बहुत दिनों तक अतीत के नशे में नहीं रह सकते। हमें तुरंत विज्ञान शिक्षा, शोध के लिए कदम उठाने होंगे। सिर्फ इंजीनियरिंग कॉलेज संस्थान खोलना पर्याप्त नहीं है। गुणवत्ता सुधारी जाए, वरना उन्हें बंद किया जाए। ये नकली संस्थान देश की गरीब जनता को शिक्षा के नाम पर ठग रहे हैं।

अफसोस की बात है कि पिछले दिनों कॉलेज लेबोरेट्री लगभग गायब हो चुकी हैं, न संसाधन हैं, न शोध के प्रति छात्रों-शिक्षकों में झुकाव। मत भूलिए डीएनए के खोजकर्ता वैज्ञानिक वाटसन, डार्विन के विकासवाद को आगे बढ़ाने वाले मिलर आदि ने ऐसी खोजें अपने कॉलेज के दिनों में ही की थीं। दुनिया क सर्वश्रेष्ठ 500 संस्थानों में शामिल होने की बातें भी अभी हवा में ही हैं। इसके लिए विश्वविद्यालयों में नियुक्ति प्रक्रिया दुरुस्त करने की जरूरत है। तीन वर्ष पहले पूर्व कैबिनेट सचिव टीएसआर सुब्रमण्यन समिति ने यूपीएससी जैसा भर्ती बोर्ड बनाने की सिफारिश की थी। उस पर तुरंत अमल करने की जरूरत है। आज हमारे उच्च शिक्षा संस्थान यदि डूब रहे हैं, तो सही भर्ती, प्रशिक्षण की खामियों के चलते। वंशवाद ने भारतीय राजनीति को जितना बर्बाद किया है, विश्वविद्यालयों को और ज्यादा।

शिक्षा में सुधार के लिए विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में पुस्तकालयों की व्यवस्था भी एक महत्वपूर्ण कदम साबित हो सकता है। क्या बिना पुस्तकालय के किसी स्कूल-कॉलेज या आधुनिक समाज की कल्पना की जा सकती है? पुस्तकालय गांव-शहर में खोलने की बातें ता दशकों से हो रही हैं, लेकिन इस सरकार को एक मजबूत इराद के साथ ऐसी बातों का हकीकत में बदलना होगा। अमरीका और दूसरे देशों में शिक्षा की बेहतरी के लिए पुस्तकालयों ने एक विशेष भूमिका निभाई है और निभा रहे हैं। शिक्षा की गुणवत्ता के लिए ही हमारे लाखों छात्र हर साल लाखों-करोड़ों की फीस देकर अमरीका, ऑस्ट्रेलिया व कनाडा की तरफ रुख कर रहे हैं। नई सरकार को इसे रोकने के लिए तुरंत समयबद्ध कदम उठाने होंगे। दुनिया की सबसे ज्यादा नौजवान पीढ़ी, अच्छी शिक्षा के दम पर ही देश को आगे ले जाने में समर्थ हो सकती है।

॥ ओ३म् ॥

आर्य नीति

सत्यव्रत सामवेदी, सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक 5च-13, जवाहर नगर, जयपुर के लिये हरिहर प्रिन्टर्स, आदर्श नगर, जयपुर से मुद्रित।

सम्पादक मण्डल

घनश्यामधर त्रिपाठी

फोन नं. : 0141-2621859 का. : 2624951

M : 9829052697, 9929804883 e-mail: Vishwamaryam@gmail.com Vishwamaryam@rediffmail.com

आर्य समाज, विद्या समिति एवं शिक्षा समिति, आदर्श नगर, जयपुर के सौजन्य से प्रकाशित

-:: डाक वापसी का पता ::-

आर्य नीति, आर्य समाज, आदर्श नगर, जयपुर-4, राज.

प्रेषक : सत्यव्रत सामवेदी, सम्पादक, आर्य नीति
आर्य समाज, राजापार्क, जयपुर - 4

टिकिट

पंजियन संख्या
RAJHIN(RNI)/2000/2567
डाक पंजीयन संख्या
Jaipur City/264/2018-20

प्रेषित : ....